नईदुनिया

संपादकीय

बढ़ती आय और सिकुड़ता मध्य वर्ग

भारत के आर्थिक भविष्य के लिए चेतावनी का संकेत

भारत की अर्थव्यवस्था में पिछले कुछ वर्षों में तेजी से बदलाव देखने को मिले हैं। हालिया सर्वेक्षणों और अनुमानों के अनुसार 2021 से 2031 के बीच देश में आय का स्तर बढ़ेगा। तीन लाख रुपये से कम वार्षिक आय वाले परिवारों की संख्या घटेगी, जबकि आठ लाख रुपये से अधिक आय वाले परिवारों की हिस्सेदारी बढ़ेगी। पहली नजर में यह तस्वीर उत्साहजनक लगती है, क्योंकि इससे समृद्धि बढ़ने का संकेत मिलता है। लेकिन गहराई से देखने पर यह बदलाव एक नई चुनौती भी सामने लाता है। यदि आय में वृद्धि समान रूप से नहीं होती और उसका लाभ केवल सीमित वर्ग तक पहुंचता है, तो आर्थिक विकास के बावजूद सामाजिक असंतुलन बढ़ सकता है। अनुमानों के अनुसार 2021 में तीन लाख रुपये से कम आय वाले परिवारों की हिस्सेदारी 42.99 फीसदी थी, जो 2031 तक घटकर 25.86 फीसदी रह सकती है। वहीं दस लाख रुपये से अधिक आय वाले परिवारों की हिस्सेदारी 9.55 फीसदी से बढ़कर 16.89 फीसदी होने का अनुमान है। यह बदलाव बताता है कि उच्च आय वर्ग तेजी से मजबूत हो रहा है। कोविड-19 के बाद सेवा क्षेत्र, सूचना प्रौद्योगिकी, डिजिटल कारोबार और उच्च कौशल वाली नौकरियों में वृद्धि ने आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सरकार की अवसंरचना, विनिर्माण और निवेश बढ़ाने वाली नीतियों का भी सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। ग्रामीण क्षेत्रों में भी विभिन्न योजनाओं के कारण आय में कुछ सुधार हुआ है, लेकिन यह वृद्धि अभी व्यापक नहीं कही जा सकती।

सबसे बड़ा प्रश्न मध्य वर्ग की स्थिति को लेकर है। किसी भी देश की आर्थिक और सामाजिक स्थिरता का आधार मजबूत मध्य वर्ग होता है। यही वर्ग उपभोग बढ़ाता है, कर चुकाता है और शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर सबसे अधिक निवेश करता है। लेकिन वर्तमान संकेत बताते हैं कि मध्य वर्ग अपेक्षित गति से नहीं बढ़ रहा। तीन से आठ लाख रुपये वार्षिक आय वाले परिवारों की हिस्सेदारी में बहुत अधिक बदलाव नहीं दिख रहा। इसका अर्थ है कि समाज का एक हिस्सा तेजी से उच्च आय वर्ग में पहुंच रहा है, जबकि दूसरा हिस्सा महंगाई, बेरोजगारी और सीमित अवसरों के कारण संघर्ष कर रहा है।

इस असंतुलन के सामाजिक परिणाम गंभीर हो सकते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य और आवास लगातार महंगे हो रहे हैं। यदि आय वृद्धि इन खर्चों की गति से पीछे रह गई, तो बड़ी आबादी आर्थिक दबाव में आ जाएगी। इसलिए अब केवल सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धि पर्याप्त नहीं है, बल्कि समावेशी विकास पर जोर देना होगा। कौशल विकास, रोजगार सृजन, कृषि और सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्योगों को मजबूत करना समय की आवश्यकता है। सामाजिक सुरक्षा योजनाओं को भी अधिक प्रभावी बनाना होगा, ताकि कमजोर वर्ग विकास की मुख्यधारा से जुड़ सके। भारत 2031 तक दुनिया की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में शामिल होने की ओर बढ़ रहा है। यह उपलब्धि तभी सार्थक होगी, जब विकास का लाभ समाज के हर वर्ग तक पहुंचे। मजबूत और विस्तृत मध्य वर्ग ही किसी भी अर्थव्यवस्था की वास्तविक ताकत होता है। इसलिए आर्थिक नीतियों का लक्ष्य केवल आय बढ़ाना नहीं, बल्कि अवसरों की समान उपलब्धता और सामाजिक संतुलन सुनिश्चित करना भी होना चाहिए। तभी भारत का विकास स्थायी, न्यायपूर्ण और व्यापक बन सकेगा।

जब समझौते इंसानों से बड़े हो जाएं...

दुनिया की नजरें परमाणु वार्ता पर हैं, लेकिन ईरान की जनता अब भी न्याय और आज़ादी का इंतजार कर रही है

अपूर्व तिवारी

ईरान एक बार फिर अंतरराष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में है। दुनिया इस समय परमाणु समझौते, आर्थिक प्रतिबंधों, पश्चिम एशिया की बदलती परिस्थितियों और तेल बाजार की संभावित उथल-पुथल पर नजर रखे हुए है। लेकिन इन सभी चर्चाओं के बीच एक चेहरा लगातार धुंधला पड़ता जा रहा है - वह है ईरान का आम नागरिक, जिसने कुछ महीने पहले बेहतर भविष्य, लोकतांत्रिक अधिकारों और सम्मानजनक जीवन की उम्मीद में सत्ता को खुली चुनौती देने का साहस दिखाया था।

उसी दौर में अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने प्रदर्शनकारियों के समर्थन में कहा था, 'मदद रास्ते में है।' यह केवल राजनीतिक बयान नहीं था। हजारों प्रदर्शनकारियों ने इसे इस भरोसे के रूप में देखा कि दुनिया उनकी पीड़ा को समझ रही है और उन्हें अकेला नहीं छोड़ेगी। लेकिन आज तस्वीर बदल चुकी है। अंतरराष्ट्रीय विमर्श में परमाणु कार्यक्रम, प्रतिबंधों में ढील और क्षेत्रीय सुरक्षा प्रमुख मुद्दे बन गए हैं, जबकि लोकतंत्र और नागरिक अधिकारों की मांग करने वाले ईरानी फिर चर्चा के हाशिए पर पहुंच गए हैं। यही इस पूरे घटनाक्रम का सबसे बड़ा और सबसे असहज सवाल है। क्या दुनिया ने ईरान की जनता से किया अपना वादा भुला दिया?

पिछले कुछ महीनों में ईरान को लेकर वैश्विक बहस का केंद्र पूरी तरह बदल गया है। यह चर्चा जरूर हो रही है कि अमेरिका और ईरान के बीच समझौते से तेल बाजार पर क्या असर पड़ेगा, इज़राइल की सुरक्षा कितनी प्रभावित होगी, होरमुज जलडमरूमध्य में जहाजों की आवाजाही सुरक्षित रहेगी या नहीं और पश्चिम एशिया में तनाव कम होगा या नहीं। ये सभी प्रश्न महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि इनका असर पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्था और सुरक्षा पर पड़ता है। लेकिन इसी शोर में वह सबसे जरूरी सवाल दब गया है कि ईरान की जनता आखिर किस हाल में है।

दरअसल, ईरान के हालिया आंदोलन को केवल महंगाई और बेरोजगारी का विरोध मानना बड़ी भूल होगी। आर्थिक संकट ने लोगों को सड़कों पर आने की वजह जरूर दी, लेकिन उनके संघर्ष का उद्देश्य उससे कहीं बड़ा था। वे अपने देश में सम्मान, नागरिक अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और ऐसी व्यवस्था चाहते थे, जिसमें जनता की इच्छा सर्वोपरि हो। उनका संदेश साफ था कि ईरान का भविष्य उसके नागरिक तय करें, न कि बंदूक, धार्मिक सत्ता या भय का माहौल।

इन प्रदर्शनों में महिलाएं थीं, छात्र थे, मजदूर थे, शिक्षक थे, सेवानिवृत्त नागरिक थे और नई पीढ़ी के वे युवा भी थे, जिन्होंने अपना पूरा जीवन प्रतिबंधों और नियंत्रण के बीच बिताया है। वे जानते थे कि विरोध का मतलब जेल, हिंसा या मौत भी हो सकता है, फिर भी वे पीछे नहीं हटे। यही किसी भी लोकतांत्रिक आंदोलन की सबसे बड़ी ताकत होती है।

मानवाधिकार संगठनों ने आरोप लगाया कि प्रदर्शनों के दौरान बड़ी संख्या में लोगों को गिरफ्तार किया गया, कई प्रदर्शनकारियों की मौत हुई और संचार सेवाओं पर भी प्रतिबंध लगाए गए। एमनेस्टी इंटरनेशनल ने इसे वर्षों में सबसे कठोर दमन में से एक बताया। यदि किसी देश में नागरिकों को अपनी बात कहने की कीमत जान देकर चुकानी पड़े, तो यह केवल आंतरिक राजनीति का विषय नहीं रह जाता, बल्कि पूरी दुनिया के लिए चिंता का प्रश्न बन जाता है।

विडंबना यह है कि जैसे-जैसे कूटनीतिक बातचीत आगे बढ़ी, मानवाधिकारों की चर्चा पीछे छूटती चली गई। आज अधिक चिंता इस बात की है कि प्रतिबंध हटेंगे या नहीं, तेल का निर्यात कितना बढ़ेगा और क्षेत्रीय तनाव किस हद तक कम होगा। लेकिन यदि किसी समझौते की कीमत उन लोगों की उम्मीदों से चुकाई जाए, जिन्होंने लोकतंत्र के लिए संघर्ष किया है, तो ऐसी शांति अधूरी मानी जाएगी।

यहीं डोनाल्ड ट्रम्प के उस बयान की भी कसौटी है। यदि किसी विश्व नेता ने सार्वजनिक रूप से प्रदर्शनकारियों से कहा कि 'मदद रास्ते में है,' तो यह केवल राजनीतिक नारा नहीं होना चाहिए। विश्वसनीय नेतृत्व की पहचान संकट के समय दिए गए भाषणों से नहीं, बल्कि निभाए गए वादों से होती है। यदि समर्थन केवल बयान तक सीमित रह जाए और बाद में सारी प्राथमिकताएं बदल जाएं, तो लोकतंत्र के लिए संघर्ष कर रहे लोगों का भरोसा टूटता है।

यह भी उतना ही सच है कि किसी देश में राजनीतिक परिवर्तन बाहर से नहीं थोपा जा सकता। इराक, लीबिया और अफगानिस्तान के अनुभव बताते हैं कि विदेशी हस्तक्षेप स्थायी लोकतंत्र की गारंटी नहीं देता। ईरान का भविष्य भी आखिरकार ईरान की जनता ही तय करेगी। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि दुनिया पूरी तरह मौन हो जाए। मानवाधिकारों की रक्षा, स्वतंत्र सूचना के प्रवाह को समर्थन, सेंसरशिप से लड़ने वाली तकनीकों की उपलब्धता, अत्याचारों के प्रमाण सुरक्षित रखना और दोषियों पर लक्षित प्रतिबंध जैसे कदम लोकतांत्रिक देशों की जिम्मेदारी भी हैं।

भारत सहित दुनिया के कई देशों के सामने चुनौती यह है कि वे एक ओर अपने सामरिक और आर्थिक हितों की रक्षा करें, तो दूसरी ओर मानवाधिकारों के सवाल को भी अनदेखा न करें। विदेश नीति केवल रणनीतिक हितों का दस्तावेज नहीं होती, उसमें नैतिक विश्वसनीयता भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है।

ईरान आज केवल परमाणु कार्यक्रम का विषय नहीं है। वह उन लाखों लोगों की कहानी भी है, जिन्होंने बेहतर भविष्य के लिए अपनी आवाज़ उठाई। यदि दुनिया केवल समझौतों, प्रतिबंधों और तेल बाजार तक सीमित रह गई, तो इतिहास यह भी दर्ज करेगा कि लोकतंत्र की मांग करने वाले लोगों की आवाज़ कूटनीति की मेज पर दब गई।

ईरान का भविष्य किसी समझौता-पत्र से नहीं बदलेगा। वह तब बदलेगा, जब वहां के नागरिक बिना डर अपनी बात कह सकेंगे। दुनिया चाहे किसी भी रणनीति पर आगे बढ़े, उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि हर परमाणु समझौते से पहले इंसान आते हैं। यदि लोकतंत्र और मानवाधिकार केवल भाषणों तक सीमित रह जाएं, तो 'मदद रास्ते में है' जैसे शब्द इतिहास में एक अधूरा वादा बनकर रह जाएंगे।

आजकल

ग्रामीण ऐप से कर रहे बूंदें बचाने की प्लानिंग

पानी की हर बूंद का हिसाब रखेगा डिजिटल ऐप

जल संकट आज भारत के सामने सबसे बड़ी चुनौती बनकर उभरा है। भूजल स्तर लगातार नीचे जा रहा है, नदियां सूख रही हैं और मानसून की अनिश्चितता बढ़ रही है। ऐसे समय में तकनीक के जरिए जल प्रबंधन करना समय की मांग बन गया है। इसी दिशा में प्रशासन और सामाजिक संस्थाओं ने मिलकर एक ऐप आधारित पहल शुरू की है, जिसका उद्देश्य पानी की हर बूंद का रिकॉर्ड रखना और उसे बचाना है। इस ऐप का मूल विचार सरल है। मोबाइल पर बनने वाले डिजिटल नक्शे में हर सरकारी जलस्रोत को दर्ज किया जाएगा, चाहे वह कुआं हो, बावड़ी, तालाब या चेकडैम। प्रत्येक स्रोत की स्थिति, गहराई, उपयोग और संरक्षण की जानकारी ऐप पर अपलोड की जाएगी। दिल्ली की एक सामाजिक संस्था ने इस परियोजना को तैयार किया है और अब इसे नौ राज्यों के 45 जिलों में लागू किया जा रहा है। झारखंड के रामगढ़ जिले को भी इसमें शामिल किया गया है, जहां पायलट प्रोजेक्ट के तहत 237 गांवों में सर्वे शुरू हो चुका है।

जलस्रोतों का सटीक डाटा उपलब्ध होने से योजनाएं अधिक प्रभावी बन सकेंगी। अभी तक अधिकांश गांवों में यह जानकारी कागजों या लोगों की याददाश्त तक सीमित थी। ऐप के माध्यम से हर जलस्रोत जियो-टैग होगा और फोटो सहित उसकी स्थिति दर्ज होगी। इससे यह तय करना आसान होगा कि कहां मरम्मत की जरूरत है और कहां नए जलस्रोत विकसित किए जाने चाहिए।

डिजिटल डाटा से पारदर्शिता भी बढ़ेगी। ग्राम पंचायत से लेकर जिला प्रशासन तक सभी के पास एक समान जानकारी होगी, जिससे फंड के दुरुपयोग की संभावना कम होगी। हालांकि इंटरनेट, प्रशिक्षण और डाटा के नियमित अद्यतन जैसी चुनौतियां भी हैं। फिर भी यह पहल जल संरक्षण की दिशा में एक सकारात्मक कदम है। यदि इसे प्रभावी ढंग से लागू किया गया तो तकनीक के सहारे जल सुरक्षा और टिकाऊ विकास दोनों को नई मजबूती मिलेगी।

24 छात्रों पर एक शिक्षक, फिर भी सवाल

शिक्षा मंत्रालय ने यूडीआईएसई प्लस 2025-26 की रिपोर्ट जारी की है। इस रिपोर्ट में देश की स्कूली शिक्षा की तस्वीर के दो पहलू सामने आए हैं। एक तरफ आंकड़े बताते हैं कि स्कूलों की संख्या बढ़ी है, शिक्षक भर्ती हुए हैं और बुनियादी सुविधाएं सुधरी हैं। दूसरी तरफ जमीनी हकीकत यह है कि सीखने का स्तर अब भी चिंता का विषय बना हुआ है। आंकड़ों की चमक और कक्षा की वास्तविकता में अंतर साफ दिखाई देता है।

देश में 14.67 लाख स्कूल हैं। इन स्कूलों में 24.72 करोड़ बच्चे पढ़ रहे हैं। इनमें 12.75 करोड़ लड़के और 11.96 करोड़ लड़कियां शामिल हैं। देशभर में 1.02 करोड़ शिक्षक कार्यरत हैं। यानी औसतन हर 24 छात्रों पर एक शिक्षक है। यह अनुपात सुधार का संकेत है, क्योंकि पहले यह स्थिति और खराब थी। स्कूलों में बुनियादी सुविधाएं भी बेहतर हुई हैं। 99.5 फीसदी स्कूलों में पीने का पानी उपलब्ध है, 95 फीसदी स्कूलों में बिजली है और 98.5 फीसदी स्कूलों में लड़कियों के लिए अलग शौचालय हैं।

सरकार ने पिछले दस वर्षों में स्कूल खोलने और शिक्षक भर्ती पर जोर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि नामांकन बढ़ा और ड्रॉपआउट दर घटी। प्राथमिक स्तर पर ड्रॉपआउट दर 0.3 फीसदी, मिडिल स्तर पर 3.6 फीसदी और सेकेंडरी स्तर पर 9.5 फीसदी है। रिटेंशन रेट भी बेहतर हुआ है। प्राथमिक स्तर पर 91.1 फीसदी बच्चे अगली कक्षा तक पहुंच रहे हैं।

लेकिन सबसे बड़ा सवाल यह है कि जो बच्चे स्कूल में टिक रहे हैं, क्या वे वास्तव में सीख भी रहे हैं? राष्ट्रीय उपलब्धि सर्वेक्षण और अन्य आकलन बताते हैं कि कक्षा पांच का बच्चा कक्षा दो की किताब सहजता से नहीं पढ़ पाता और कक्षा आठ का छात्र साधारण गणित के सवाल हल नहीं कर पाता। इसका अर्थ साफ है कि स्कूल में प्रवेश तो हो रहा है, लेकिन सीखने की प्रक्रिया कमजोर बनी हुई है।

हर 24 छात्रों पर एक शिक्षक का अनुपात कागज पर संतोषजनक लगता है, लेकिन जमीनी स्तर पर यह औसत वास्तविक तस्वीर नहीं दिखाता। कई स्कूलों में एक ही शिक्षक 60 से 70 बच्चों को पढ़ा रहा है, जबकि अनेक स्कूलों में विषय विशेषज्ञ शिक्षक ही नहीं हैं। विज्ञान, गणित और अंग्रेजी के शिक्षकों की सबसे अधिक कमी है। एक शिक्षक को कई विषय पढ़ाने पड़ते हैं और साथ ही मध्यान्ह भोजन, जनगणना, चुनाव ड्यूटी तथा अन्य प्रशासनिक कार्य भी करने पड़ते हैं। ऐसे में पढ़ाई पर पूरा ध्यान कैसे दिया जा सकता है?

समस्या शिक्षक प्रशिक्षण की भी है। नई शिक्षा नीति और बदलते पाठ्यक्रम के अनुरूप शिक्षकों को पर्याप्त रूप से तैयार नहीं किया जा रहा। अनेक शिक्षक आज भी पुराने तरीकों से पढ़ा रहे हैं। स्मार्ट क्लास और डिजिटल शिक्षा की बातें तो होती हैं, लेकिन ग्रामीण स्कूलों में इंटरनेट और डिजिटल संसाधन अब भी सीमित हैं। रिपोर्ट यह जरूर बताती है कि अधिकांश स्कूलों में पानी और बिजली की सुविधा है, लेकिन यह नहीं बताती कि पानी नियमित मिलता है या नहीं, बिजली लगातार रहती है या नहीं और शौचालय उपयोग योग्य एवं स्वच्छ हैं या नहीं।

उत्तर प्रदेश में 4.27 करोड़ विद्यार्थी और 16.42 लाख शिक्षक हैं। यहां 2.65 लाख स्कूल हैं। महाराष्ट्र में 2.16 करोड़ विद्यार्थी और 7.50 लाख शिक्षक हैं। बिहार में 2.06 करोड़ विद्यार्थी और 7.28 लाख शिक्षक, राजस्थान में 1.59 करोड़ विद्यार्थी और 7.93 लाख शिक्षक तथा मध्य प्रदेश में 1.52 करोड़ विद्यार्थी और 7.29 लाख शिक्षक हैं। देश के आधे से अधिक विद्यार्थी इन्हीं बड़े राज्यों में पढ़ते हैं, इसलिए यहां सुधार का अर्थ पूरे देश की शिक्षा व्यवस्था में सुधार होगा। प्राथमिक स्तर पर स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर है, लेकिन जैसे-जैसे कक्षाएं ऊंची होती हैं, बच्चे स्कूल छोड़ने लगते हैं। 11वीं और 12वीं तक केवल 78.1 फीसदी विद्यार्थी ही पहुंच पाते हैं। लड़कियों की स्थिति कुछ बेहतर जरूर हुई है, लेकिन आर्थिक कठिनाइयों और घरेलू जिम्मेदारियों के कारण वे भी पढ़ाई बीच में छोड़ देती हैं। इसका कारण केवल गरीबी नहीं, बल्कि शिक्षा की गुणवत्ता भी है। जब अभिभावकों को लगता है कि स्कूल में बच्चा अपेक्षित सीख नहीं पा रहा, तो वे उसे काम पर लगा देते हैं या निजी कोचिंग का खर्च नहीं उठा पाते।

नई शिक्षा नीति 2020 ने फाउंडेशनल लर्निंग पर विशेष जोर दिया है। निपुण भारत मिशन के माध्यम से कक्षा तीन तक हर बच्चे को पढ़ना, लिखना और बुनियादी गणित सिखाने का लक्ष्य रखा गया है। इसके लिए आंगनवाड़ी और प्री-स्कूल व्यवस्था को भी मजबूत किया जा रहा है। लेकिन नीति और जमीन के बीच का अंतर अब भी स्पष्ट है। शिक्षकों को बेहतर प्रशिक्षण, स्कूलों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षण सामग्री और मूल्यांकन प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है। जब तक परीक्षा रटने पर आधारित रहेगी, तब तक बच्चे अंक तो ले आएंगे, लेकिन ज्ञान अर्जित नहीं कर पाएंगे।

यूडीआईएसई की रिपोर्ट बताती है कि स्कूलों और शिक्षकों की संख्या बढ़ाने में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। अब आवश्यकता संख्या से आगे बढ़कर गुणवत्ता पर ध्यान देने की है। 24 छात्रों पर एक शिक्षक का आंकड़ा तभी सार्थक होगा, जब वह शिक्षक नियमित रूप से पढ़ाए और गैर-शैक्षणिक कार्यों में न उलझे। यदि भारत को 2047 तक विकसित राष्ट्र बनाना है, तो उसकी मजबूत नींव स्कूलों में ही रखनी होगी। हर बच्चा केवल स्कूल पहुंचे ही नहीं, बल्कि वहां गुणवत्तापूर्ण शिक्षा भी प्राप्त करे। सरकार आंकड़े दे रही है, समाज उम्मीद कर रहा है और बच्चे देश का भविष्य हैं। अब यह सुनिश्चित करना होगा कि हर स्कूल केवल इमारत न रहे, बल्कि वास्तविक अर्थों में ज्ञान का मंदिर बने।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

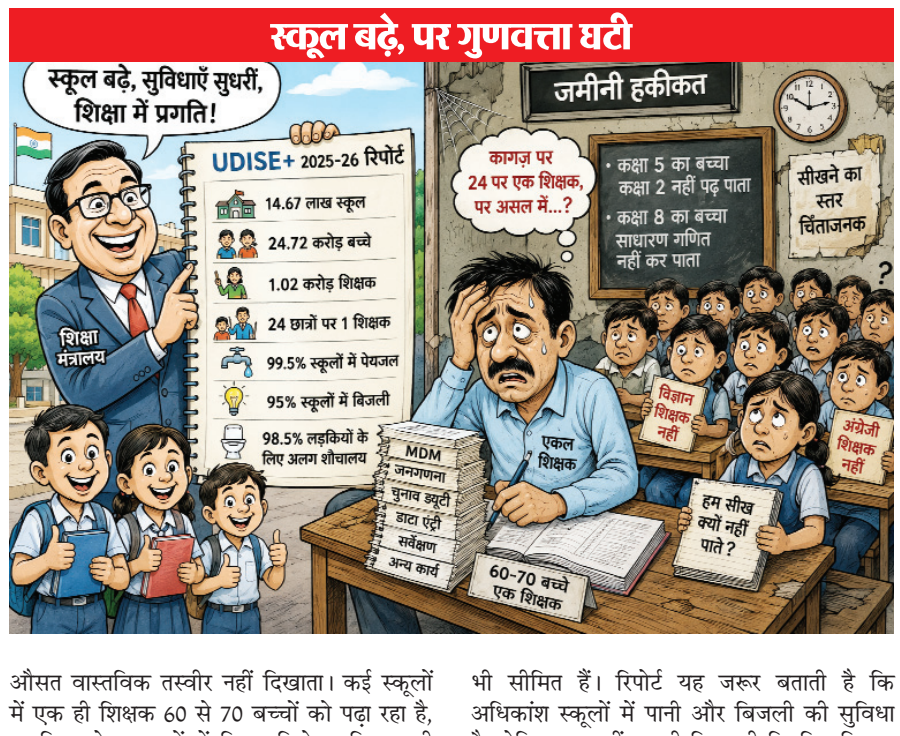

कम्पनियां कमा रहीं, आम आदमी परेशान, उपभोक्ता लुट रहा

देश में एक अजीब विरोधाभास देखने को मिल रहा है। एक तरफ कंपनियों के मुनाफे रिकॉर्ड तोड़ रहे हैं, दूसरी तरफ आम आदमी की जेब हर दिन खाली हो रही है। बाजार में चीजों के दाम आसमान छू रहे हैं, लेकिन तनख्वाह और आमदनी वहीं की वहीं है। तेल कंपनियों से लेकर एफएमसीजी तक कई बड़ी कंपनियों ने बीते वर्षों में 70 फीसदी तक का मुनाफा कमाया है, लेकिन इसका फायदा उपभोक्ता तक नहीं पहुंचा। उल्टे उसे हर चीज के लिए ज्यादा पैसे चुकाने पड़ रहे हैं।

क्रूड ऑयल का दाम गिरने पर भी राहत नहीं मिली। पेट्रोल-डीजल की कीमतें नहीं घटीं। जब अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल का भाव 68 डॉलर प्रति बैरल था, तब भी कंपनियों ने कहा कि अभी दाम नहीं घटेंगे। जब यही भाव बढ़कर 120 डॉलर प्रति बैरल तक पहुंचा, तब भी तर्क दिया गया कि लागत बढ़ गई है, इसलिए कीमतें बढ़ानी पड़ेंगी। पिछले 36 दिनों में कंपनियों ने प्रति लीटर 11 रुपये तक का मुनाफा कमाया, लेकिन उपभोक्ता को एक रुपये की भी राहत नहीं मिली। आईओसीएल, बीपीसीएल और एचपीसीएल जैसी सरकारी कंपनियों का मुनाफा 70 से 80 फीसदी तक बढ़ गया, लेकिन आम आदमी से वसूली जारी रही। कीमत तय करने का फार्मूला अब उपभोक्ता के हित में नहीं, बल्कि कंपनियों की बैलेंस शीट के हित में दिखाई देता है। जब क्रूड महंगा होता है तो दाम तुरंत बढ़ा दिए जाते हैं, लेकिन जब सस्ता होता है तो कीमतें घटाने के नाम पर चुप्पी साध ली जाती है। यही लूट का नया मॉडल बन गया है।

पेट्रोल-डीजल की महंगाई का असर हर चीज पर पड़ता है। सब्जी, दूध, दवा और किराया, सब परिवहन से जुड़े हैं। जब परिवहन महंगा होगा तो मंडी तक सब्जी भी महंगी पहुंचेगी, स्कूल बस का किराया बढ़ेगा और नौकरी पर जाने का खर्च भी बढ़ जाएगा। पिछले पांच वर्षों में वेतन उतना नहीं बढ़ा, जितनी महंगाई बढ़ी है। मध्यम वर्ग का परिवार अब महीने का बजट बनाते समय सबसे पहले खाने-पीने और बच्चों की शिक्षा में कटौती करता है, क्योंकि बिजली का बिल, गैस सिलेंडर और पेट्रोल का खर्च कम नहीं किया जा सकता। कंपनियां तिमाही नतीजों में अरबों का मुनाफा दिखा रही हैं और दूसरी तरफ वही परिवार महीने के अंत में कर्ज मांगने को मजबूर है।

यह सिर्फ तेल कंपनियों की कहानी नहीं है। साबुन, तेल, आटा, बिस्किट और दवा बनाने वाली कंपनियां भी इसी रास्ते पर चल रही हैं। पैकेट का आकार छोटा कर दिया गया, लेकिन दाम वही रखे गए। इसे 'श्रिंकफ्लेशन' कहा जाता है। उपभोक्ता को लगता है कि कीमत नहीं बढ़ी, जबकि उसे पहले से कम सामान मिल रहा है। दवाओं की कीमतों पर भी प्रभावी नियंत्रण नहीं है। एक ही साल्ट की दवा अलग-अलग कंपनियां अलग-अलग कीमत पर बेच रही हैं। डॉक्टर कंपनी का ब्रांड लिख देते हैं और मरीज को वही महंगी दवा खरीदनी पड़ती है। जेनेरिक दवाएं सस्ती हैं, लेकिन उन्हें बाजार में पर्याप्त बढ़ावा नहीं मिलता, क्योंकि उनमें कंपनियों का मुनाफा कम होता है।

सरकार भी इस व्यवस्था में बराबर की हिस्सेदार दिखाई देती है। पेट्रोल-डीजल पर केंद्र और राज्य, दोनों भारी टैक्स वसूलते हैं। जब कच्चा तेल सस्ता होता है तो टैक्स बढ़ाकर राजस्व की भरपाई कर ली जाती है। इसका मतलब यह हुआ कि कंपनी भी कमा रही है और सरकार भी, जबकि बीच में उपभोक्ता पिस रहा है। बैंकों और फिनटेक कंपनियों का हाल भी कुछ ऐसा ही है। कर्ज पर ब्याज दर बढ़ा दी जाती है, लेकिन जमा राशि पर ब्याज उसी अनुपात में नहीं बढ़ता। क्रेडिट कार्ड पर 40 फीसदी तक ब्याज वसूला जा रहा है। डिजिटल इंडिया के दौर में भी विभिन्न सेवाओं के नाम पर उपभोक्ता से लगातार शुल्क वसूला जा रहा है।

इसका सबसे बड़ा कारण प्रतिस्पर्धा का अभाव है। ज्यादातर जरूरी क्षेत्रों पर कुछ बड़ी कंपनियों का कब्जा है। तेल, सीमेंट और दवा जैसे क्षेत्रों में मुट्ठीभर कंपनियां बाजार की दिशा तय करती हैं। जब प्रतिस्पर्धा कमजोर होगी तो कंपनियां कीमत घटाने के बजाय मुनाफा बढ़ाने पर ही ध्यान देंगी। दूसरी समस्या निगरानी की कमजोरी है। उपभोक्ता संरक्षण से जुड़ी संस्थाएं घोषणाएं तो करती हैं, लेकिन जमीनी स्तर पर प्रभावी निगरानी नहीं दिखती। श्रिंकफ्लेशन को रोकने के लिए ठोस नियमों का अभाव है और एमआरपी से अधिक वसूली की शिकायतें भी लगातार सामने आती रहती हैं।

जब आम आदमी की जेब कटती है तो वह खर्च कम करता है। खर्च घटने से मांग घटती है, मांग घटने से उत्पादन प्रभावित होता है और अंततः रोजगार पर असर पड़ता है। यानी कंपनियों का अल्पकालिक मुनाफा देश की दीर्घकालिक आर्थिक वृद्धि को नुकसान पहुंचा सकता है। गांव में किसान डीजल महंगा होने से ट्रैक्टर कम चला रहा है, शहर में ऑटो चालक सवारी कम कर रहा है और घरों में लोग बिजली बचाने के लिए मजबूरी में एसी-पंखे कम चला रहे हैं। यह बचत नहीं, बल्कि घटती क्रय-शक्ति का संकेत है।

जरूरत पारदर्शिता, स्वस्थ प्रतिस्पर्धा और संतुलित कर व्यवस्था की है। तेल कंपनियों को नियमित रूप से यह बताना चाहिए कि कच्चे तेल की कीमत के आधार पर ईंधन की वास्तविक कीमत क्या बनती है। जेनेरिक दवाओं को बढ़ावा दिया जाए, पैकेट के आकार में बदलाव पर सख्त नियम लागू हों और पेट्रोल-डीजल पर कर ढांचे को अधिक तर्कसंगत बनाया जाए। विकास का अर्थ केवल जीडीपी और शेयर बाजार का बढ़ना नहीं, बल्कि आम आदमी का जीवन आसान होना भी है। कंपनियां कमाएं, लेकिन उपभोक्ता का विश्वास खोकर नहीं। सरकार ऐसी नीतियां बनाए, जिनमें मुनाफे के साथ न्याय भी सुनिश्चित हो। तभी देश का विकास संतुलित और टिकाऊ बन सकेगा।
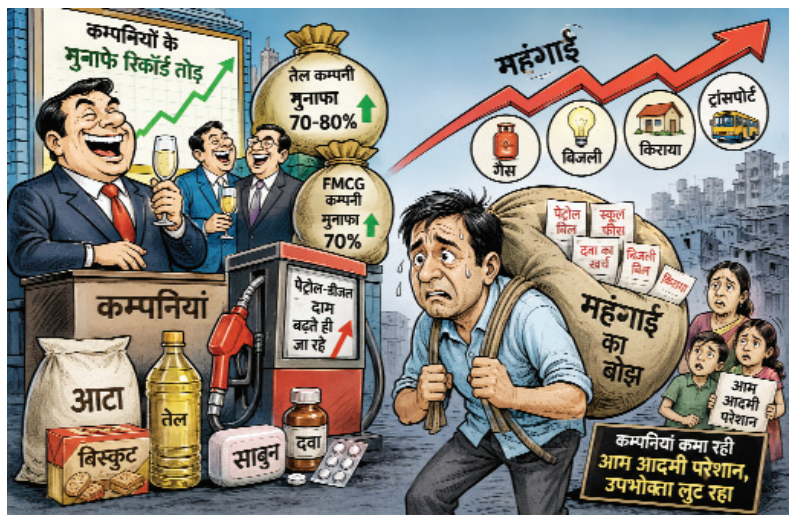
(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)